P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

गढ़वाल में दलित समाज के प्रेरणा स्रोत : श्री गंगाराम आर्य

वन्दना आर्य
शोध छात्रा,
इतिहास विभाग,
हे०न०ब०ग० केन्द्रीय
विश्वविद्यालय
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड,
भारत

इरफान अहमद
शोध छात्र,
इतिहास विभाग,
हे०न०ब०ग० केन्द्रीय
विश्वविद्यालय
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड,
भारत

सारांश

गंगाराम आर्य (1911–1986) उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र के प्रमुख दलित नेतृत्वों में से एक थे। बीसवीं शताब्दी में गढ़वाल के दलित वर्ग को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करने का कार्य इनके द्वारा किया गया। इस क्षेत्र में व्याप्त सामाजिक असमानताओं के विरोध में चले डोला पालकी आन्दोलन में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

मुख्य शब्द : शिल्पकार, डोला–पालकी, दलित, जाति प्रथा।

प्रस्तावना

19 वीं–20 वीं शताब्दी में सम्पूर्ण भारत ब्रिटिश हुकुमत तथा अपनी आंतरिक सामाजिक कुरीतियों से दोहरी लड़ाई लड़ रहा था। ब्रिटिश शासन से स्वंतत्रता प्राप्त करने के साथ–साथ भारतीय समाज विभिन्न सामाजिक कुरीतियों जैसे जातिप्रथा, अस्पृश्यता, बाल विवाह आदि को दूर करने हेतु भी प्रयासरत था। भारतीय समाज में जिन सुधारवादी आन्दोलनों ने जोर पकड़ा उनमें जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन प्रमुख थे। इस दिशा में राजा राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, गोविन्द रानाडे, विनोबा भावे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि अग्रणी रहे किन्तु जाति व्यवस्था के विरोध में सर्वप्रथम ज्योतिबा राव फूले दलित नेतृत्व के रूप में उभरे। जिन्होंने 1873 में महाराष्ट्र में सत्यशोधक समाज की स्थापना कर अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु प्रयत्न किया।[1] फुले के पश्चात् डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दलितों (शोषित वर्ग) के उद्धारक बनकर उभरे और जाति व्यवस्था के विरोध में सम्पूर्ण दलित वर्ग का नेतृत्व किया। जब सम्पूर्ण भारत सुधारवादी सामाजिक आन्दोलनों एवं ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आन्दोलनों से जूझ रहा था तो इसका प्रभाव उत्तराखण्ड राज्य पर पड़ना भी स्वाभाविक था। उत्तराखण्ड राज्य, जो कि उस समय उत्तरप्रदेश राज्य (संयुक्त प्रान्त) का भाग था, का गढ़वाल क्षेत्र सीमान्त तथा पिछड़ा हुआ था जिस कारण यहाँ 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रशासकीय सुधार, आर्थिक परिवर्तन तथा पाश्चात्य प्रभावों से उत्पन्न जन–जागरण और समाज सुधार की भावना का अंकुरण 20 वीं शताब्दी में हुआ।[2]

भारत के अन्य हिस्सों की तरह यहाँ भी सामाजिक असमानता तथा अस्पृश्यता व्याप्त थी। समाज दो वर्गों बिठ (सवर्णों) तथा डोम (निम्न वर्ग) में विभाजित था।[3] निम्न वर्ग, को जिसे गढ़वाल में शिल्पकार संबोधन प्राप्त है, अच्छे नाम रखने की अनुमति नहीं थी। वे संवर्णों के समान अपनी बारात में डोला–पालकी[21] का प्रयोग नहीं कर सकते थे, जनेऊ धारण नहीं कर सकते थे, अच्छे मकान बनाने, अच्छे वस्त्र पहनने से उन्हें रोका जाता था, मन्दिर प्रवेश तथा धारे–पनघट का उपयोग उनके लिए वर्जित था।[5]

इन समस्याओं को निदान हेतु विभिन्न स्तरों पर प्रयास किये गए। बीसवीं शताब्दी में जब देश में दलित चेतना का वातावरण बना तो उससे गढ़वाल का दलित वर्ग (शिल्पकार वर्ग) भी अछूता न रहा। यहाँ के दलित वर्ग ने समानता और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष प्रारम्भ किया। जयानन्द भारतीय गढ़वाल क्षेत्र के दलित नेतृत्व के रूप में उभरे और सामाजिक सुधारवादी आन्दोलनों की बागडोर संभाली। जयानन्द भारतीय के अतिरिक्त ताराचन्द उपल्डयाल, बाबू बोधा सिंह, कुन्दी लाल टम्टा, गिरधारी लाल आर्य, बलदेव सिंह आर्य आदि प्रमुख स्थानीय दलित नेतृत्व थे।[6] इन्हीं प्रमुख नेतृत्वों में से जिन्होंने गढ़वाल में जाति व्यवस्था, सामाजिक असमानता तथा ब्रिटिश शासन के विरोध में हुए भारत छोड़ो आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई वे थे गंगाराम आर्य।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य गंगाराम आर्य द्वारा किये गये कार्यों को लेखबद्ध करने का प्रयासमात्र है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में सामाजिक आन्दोलन तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में गंगाराम आर्य की भूमिका का मूल्यांकन करना है।
2. भारत में हुए सामाजिक सुधार आन्दोलनों का गढ़वाल क्षेत्र पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका उल्लेख करना भी इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

विषय विस्तार

गंगाराम आर्य का जन्म पौड़ी जनपद के चौंद कोट (एकेश्वर क्षेत्र) में नौगांवखाल के समीप 11 जनवरी 1911 ई0 को आर्यनगर गांव में हुआ। इससे पूर्व यह गाँव ओड़[22] गाँव नाम से प्रसिद्ध था। इस गाँव के ओड़ शिल्पकारों का सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में नाम था। इनके पिता श्री चन्द्र मणी पेशे से भवन निर्माता थे। इनकी माता का नाम श्रीमती बुथड़ी देवी था। समाज के शोषित एवं असहाय जनों की मदद करने की प्रवृत्ति इन्हें अपने परिवार से ही प्राप्त हुई। समाज के वंचित वर्गों के लिए कुछ कर गुजरने की जो भावना थी वह उन्हें अपने परिवार से प्राप्त हुई। इसका ही प्रभाव था कि उन्होंने सामाजिक सुधार आन्दोलनों में बढ़ चढ़कर भाग लिया। ग्रामीण क्षेत्र में कोई पाठशाला न होने के कारण गंगाराम विधिवत् शिक्षा ग्रहण न कर सके। इनकी माता ने अपने निकट संबंधी सितार सिंह जी से बालक को शिक्षित करने का अनुरोध किया। "श्री सितार सिंह अपने शिष्यों को धुलेटा[23] के माध्यम से शिक्षित करने के लिए प्रसिद्ध थे।" 13 वर्ष की आयु में ही गंगाराम आर्य का विवाह हो गया जिससे इनकी आगे की शिक्षा बाधित हो गई। विवाह के कुछ वर्ष पश्चात् 1928 में इनकी पत्नी का निधन हो गया। अपने जीवन में घटित इस घटना से इनका ध्यान बाल विवाह जैसी कुप्रथा की ओर आकर्षित हुआ जिसके कारण अनेक बालक–बालिकाओं को असमय ही विदुर और वैधव्य का अभिशाप झेलना पड़ता था।[7]

1928 में इनके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ, वे आजीविका की खोज में क्वेटा (बलुचिस्तान) चले गये। जहाँ अभी उन्हें कुछ ही समय हुआ था कि एक बार उन्हें ज्ञात हुआ कि एक अस्पताल में गढ़वाल के किसी शिल्पकार युवक की मृत्यु हुई है। जिसे अस्पताल प्रशासन ने लावारिस समझकर शव जमादारों को सौंप दिया है। गंगाराम ने युवक के शव का अन्तिम संस्कार करने के लिए अपने अन्य साथी मित्रों को सूचना दी। उनके सभी साथी अस्पताल पहुँचे और युवक का शव ले लिया तथा चन्दा एकत्रित कर शव का अंतिम संस्कार किया। इस कार्य में उनके साथ दुर्गा लाल जी भिक्षु लोकमणी आर्य, जगतराम आर्य, श्री दौलत सिंह आर्य आदि युवक थे।[8] इस घटना से प्रभावित होकर श्री गंगाराम आर्य ने आपसी सहयोग हेतु गैर मुल्क में गढ़वाली युवकों के एक संगठन की आवश्यकता को अनुभव किया। इस विचार को कार्यरूप में परिणित करने हेतु उन्होंने सभी गढ़वाली शिल्पकार बन्धुओं को एकत्रित किया और सबके सम्मुख उन्होंने एक संगठन के निर्माण की बात रखी। जिसे सभी के द्वारा स्वीकृत कर लिया गया और सर्व सम्मति से सभी लोगों ने गढ़वाल प्रचारिणी सभा की आधारशिला रखी जो कालान्तर में आर्य शिल्पकार सभा के नाम से विख्यात हुई। श्री गंगाराम इसके उप प्रधान बनाए गए। यह संस्था शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई तथा कुछ समय पश्चात् दिल्ली, कराची, शिमला तथा देहरादून जैसे नगरों में इसकी उपशाखाएं गठित हुई।[9] क्वेटा में रहकर ही सर्वप्रथम गंगाराम आर्य समाज के सम्पर्क में आए और सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ पढ़ने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ के अध्ययन ने उनके जीवन की दिशा को ही बदल दिया और वे आर्य समाज की विचार धारा को जन–जन तक पहुँचाने के लिए समर्पित हो गए। इसी का परिणाम था कि गंगाराम ने सदैव आर्य समाज के नियमों और शिक्षा का पालन किया।[10]

1932 में श्री गंगाराम आर्य गढ़वाल वापस आए।[11] यह वह दौर था जब गाँधी व अंबेडकर के मध्य पूना समझौता हुआ था। कांग्रेस जाति प्रथा को हिन्दुओं के एकीकरण में सबसे बड़ी बाधा समझ रही थी क्योंकि इससे ब्रिटिश हुकुमत से स्वतंत्रता प्राप्त करने के सपने को भी चोट पहुँच रही थी। अतः कांग्रेस द्वारा कई स्थानों पर सार्वजनिक भोजों का आयोजन किया गया जिनमें सवर्ण और शिल्पकार बन्धुओं को एक साथ भोजन करने का आमंत्रण मिला। कांग्रेस के प्रयास को सफल करने में उत्तराखण्ड की जनता भी पीछे न रही। यहाँ भी कांग्रेसी जनों ने चंदा इकट्ठा कर कईं स्थानों पर सार्वजनिक भोजों का आयोजन किया। इसी प्रकार के एक सामुहिक भोज का आयोजन चौंदकोट क्षेत्र के कस्बे नौंगावखाल में भी किया गया। जिसका संचालन नौगांवखाल के पं0 शीतराम पांथरी, श्री रूद्रीदत्त रावत, श्री चन्द्र सिंह रावत, श्री दयालुमुनि आदि कांग्रेसी और आर्य समाजियों ने किया। इस भोज में श्री गंगाराम को भी आमंत्रित किया गया।[12]

गंगाराम आर्य ने गढ़वाल वापस आकर सामाजिक सुधार हेतु अपने गांव को ही चुना। जब उत्तराखण्ड के सामाजिक आन्दोलन के कर्णधार जयानन्द भारतीय जब गढ़वाल में घर–घर जाकर यहाँ के निवासियों को यज्ञोपवीत धारण करवा कर उन्हें सामाजिक बुराइयों से दूर रहने का आदेश दे रहे थे तो इसी अवधि के दौरान गंगाराम आर्य ने जयानन्द भारतीय को अपने गाँव आर्यनगर में आमंत्रित किया। इस अवसर पर भारतीय जी ने देखा कि गंगाराम के घर पर अनेक देवी–देवताओं के थान बने हुए हैं तो उन्होंने गंगाराम जी से कहा – "गंगाराम जी आपके अपने घर पर ही देवी–देवताओं के पूजा स्थल बने हुए हैं तथा जब तक आप स्वयं इनसे छुटकारा नहीं पा लेते हो तब तक अंधविश्वासों पर विश्वास न करने की बात आप दूसरों से कैसे कह सकते हैं ?" इस बात पर गंगाराम जी शर्मिंदा हुए और उन्होंने उसी समय देवताओं के थान में रखे द्यूण–त्रिशूल आदि को बाहर फेंक दिया और भारतीय जी से कहा कि "भारतीय जी अब तो आपको कोई शिकायत नहीं होगी।"[13] आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रति गंगाराम आर्य की अटूट श्रद्धा थी और इसका प्रमाण उन्होंने भारतीय जी को दे दिया। इसके पश्चात् समस्त ग्राणीणों का शुद्धिकरण संस्कार करते हुए यज्ञोपवती धारण करवाया गया और उन्हें सदा मांसाहार, धुम्रपान तथा मादक द्रव्यों से दूर रहने का उपदेश दिया गया।

डोलापालकी आन्दोलन तथा भारत छोड़ो आन्दोलन में योगदान

1920 के दशक में नवदीक्षित आर्य समाजी शिल्पकारों ने सवर्णों की भांति अपने विवाह उत्सवों में डोला–पालकी की परम्परा आरम्भ करने की ठानी।[14] यह तत्कालीन रूढ़िवादी समाज से खुली बगावत थी। डोला–पालकी आन्दोलन गढ़वाल का सर्वाधिक प्रसिद्ध आन्दोलन था। गंगाराम आर्य की इस आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका रही। उन्होंने अपने ही गाँव आर्यनगर के नवयुवकों मोहनलाल तथा मनोहर लाल को प्रेरित कर यह संकल्प दिलाया कि – "यदि वे कभी विवाह करेंगे तो डोला–पालकी में बैठकर करेंगे अन्यथा आजीवन कुँवारे रह जायेंगे।"[15]

जनवरी 1940 में इनके गाँव की एक बारात डोला–पालकी लेकर सैंधार जा रही थी।[16] जिसे ग्राम भेटी के सवर्णों द्वारा लूटा गया। इस संघर्ष के दौरान कुछ सवर्णों द्वारा गंगाराम आर्य की कुल्हाड़ी से हत्या करने का प्रयास किया गया। इसी तरह की एक घटना 18 मई सन् 1942 में हुई जब इनके गांव के मोहन लाल जी की बारात डोला–पालकी के साथ ग्राम दांथा पहुँची तो वहाँ के सवर्णों ने इनकी बारात रोक ली और इन्हें पैदल ही वधु के घर जाने को कहा लेकिन इन्होंने उनकी बात नहीं मानी। इस पर बात अत्यधिक बढ़ गई तो दुल्हन के पिता ने बारातियों से कहा कि – "यदि आप मेरी पुत्री से विवाह करना चाहते है तो मेरे घर पैदल चलकर आयें अन्यथा मैं अपनी पुत्री नहीं दूंगा।" इस पर मोहन लाल जी जो पहले ही बिना डोला–पालकी के विवाह न करने की शपथ ले चुके थे, सेहरा–मुकुट फेंक विवाह करने से मना कर दिया। इस दौरान दूसरी और गंगाराम आर्य ने मोहनलाल जी का विवाह उसी समय चुण्डिन्डा गाँव में करवा दिया।[17]

इस प्रकार डोला–पालकी, जो कि शिल्पकारों के लिए आत्म सम्मान का प्रश्न बन चुका था, को शिल्पकार अपने विवाह उत्सवों में प्रयोग करने के लिए कटिबद्ध थे जिस पर अभी तक सवर्णों का ही अधिकार था। तमाम समस्याओं के आने के बाद भी गंगाराम आर्य ने डोला–पालकी आन्दोलन को समस्त शिल्पकार वर्ग तक पहुँचाने का प्रयत्न किया और शिल्पकारों बन्धुओं का साथ देकर आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरणास्रोत बने।

1942 ई0 में जब भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो देश के अनेक युवक इसमें सम्मिलित हुए। गंगाराम आर्य, जो कि एक कांग्रेस कार्यकर्ता थे, ने इस आन्दोलन में बढ़–चढ़कर कर भाग लिया। जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार द्वारा इन्हें कैद कर लिया गया। जेल जाने वालों में इनके साथ बलदेव सिंह आर्य तथा श्री तोता राम जुगराण भी थे।[18] 22 नवम्बर सन् 1944 ई0 को दोगड्डा के डी0ए0वी0 कॉलेज में गढ़वाल मण्डल के आर्य समाजी कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक आयोजित की गई जिसमें ग्राम चौकड़ी के प्रधान जी बख्तार सिंह जी को अध्यक्ष बनाया गया। इस बैठक में आर्य समाज प्रतिनिधि सभा का गठन किया गया जिसके प्रधान श्री जयानन्द भारतीय, उप–प्रधान डॉ0 गजे सिंह, मंत्री तोताराम जुगराण, उप मंत्री महेन्द्र प्रताप तथा अंतरंग सदस्य श्री बख्तार सिंह, श्री रामसिहं गुंडी, श्री मुकुन्दी लाल, श्री गंगाराम आर्य एवं श्री बलदेव सिंह आर्य सर्व सम्मति से चुने गये।[18] सन् 1946 में जब पं0 जवाहर लाल नेहरू पहली बार गढ़वाल आये तो इस अवसर पर गंगाराम आर्य ने 'नेहरू अभिनन्दन कोष' में 1100 रू0 की धनराशि भेंट की जो इन्होंने चंदे द्वारा इकट्ठी की थी। सन् 1947 में श्री जयानन्द भारतीय ने हल्द्वानी और नैनीताल में आर्य शिल्पकारों का वृहद सम्मेलन आयोजित किया तो श्री गंगाराम आर्य ने उसमें भी भाग लिया। 6 दिसम्बर सन् 1980 को उत्तर–प्रदेश पर्वतीय शिल्पकार सभा ने लखनऊ में समस्त उत्तराखण्ड के शिल्पकारों के लिए बाल रवीन्द्रालय एक सम्मेलन किया जिसमें गंगाराम आर्य भी सम्मिलित हुए।[19]

गंगाराम आर्य समाजसुधारक तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता दोनों ही थे। वे चाहते थे कि बालक व बालिकाओं को समान रूप से शिक्षा मिले। इसके लिए उन्होंने घर–घर जाकर लोगों को प्रेरित किया। वे हरिजन कल्याण विभाग के कार्यालयों में जाकर शिल्पकार बन्धुओं के पुत्र व पुत्रियों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था करवाते थे। सरला बहन द्वारा संचालित अनेक स्कूलों व डी0ए0वी0 कॉलेजों में उन्होंने लड़कियों को प्रवेश करवाया। कन्या विक्रय और बाल विवाह का भी इनके द्वारा विरोध किया गया। गंगाराम आर्य का अंतिम समय उनके अपने पैतृक गांव आर्यनगर में बीता। जहाँ 20 जून 1986 को इनकी मृत्यु हुई।[20]

निष्कर्ष

गंगाराम आर्य उन आन्दोलनकारियों में से एक थे जिन्होंने अपना जीवन देश हित के लिए समर्पित किया। आर्य समाज से प्रभावित होने के कारण इन्होंने आजीवन इसके नियमों का पालन किया और सच्चे आर्य समाजी बने रहे। जयानन्द भारतीय के ये अभिन्न सहयोगी रहे और चाहे क्षेत्रीय आन्दोलन डोला–पालकी हो या राष्ट्रीय स्तरीय आन्दोलन इन्होंने उनमें बढ़–चढ़कर भाग लिया। गढ़वाल के दलित वर्ग में जागृति लाने का जो प्रयास इनके द्वारा किया गया वह सराहनीय है। किन्तु यह विडम्बना है कि शनैः शनैः शिल्पकार समाज इनके द्वारा किए गए कार्यों को भूलता जा रहा है। गढ़वाल के शिल्पकार वर्ग के स्थानीय नेतृत्व सिर्फ किताबों तक ही सिमट कर रह गए हैं।

अंत टिप्पणी

1. *ग्रोवर, बी. एल., मेहता, अलका, आधुनिक भारत का इतिहास, एस0 चन्द कं0 प्रा0लि0, पुनः मुद्रित, 2013, पृ0सं0 287।*
2. *धस्माना, योगेश, उत्तराखण्ड में जन–जागरण और आन्दोलनों का इतिहास (ब्रिटिश गढ़वाल का समकालीन सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य (1815–1947), विनसर पब्लिशिंग कं0 देहरादून, 2006, पृ0सं0 291।*
3. *Negi, Shantan, Singh, 20th Century Dalit Organisations in Uttarakhand, (Ed.), Pandey, Girija, Bhakuni, Heera Singh, Himalayee Itihas ke Vividh Ayam, Anamika Publishers, New Delhi, 2013, Pg. 46.*

4. Negi, Shantan, Singh, The Dola Palki movement : Dalit Struggle for social justice in Uttarakhand during 20th century, Indian History Congress, Vol. 72, 2011, Pg. 781.
5. खत्री, जसपाल सिंह, बीसवीं सदी में गढ़वाल में दलित चेतना : एक ऐतिहासिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, 2010, पृ0सं0 137।
6. पूर्वोक्त।
7. ढौंडियाल, डॉ0 नन्दकिशोर, गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां, (सन् 1986 से सन् 1990 तक), भाग–2, धाद प्रकाशन, देहरादून, 2011, पृ0सं0 42।
8. पूर्वोक्त पृ0सं0 42।
9. पूर्वोक्त पृ0सं0 43।
10. पूर्वोक्त पृ0सं0 44।
11. पूर्वोक्त पृ0सं0 44–45।
12. पूर्वोक्त पृ0सं0 45।
13. पूर्वोक्त पृ0सं0 46।
14. खत्री, जसपाल सिंह, गढ़वाल में दलित चेतना का प्रसार व समानता के लिए संघर्ष, सम्पादित, पाण्डे, गिरिजा, भाकुनी, हीरा सिंह, हिमालयी इतिहास के विविध आयाम, 2013, पृ0सं0 358– 359।
15. ढौंडियाल, डॉ0 नन्दकिशोर, गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां, (सन् 1986 से सन् 1990 तक), भाग–2, धाद प्रकाशन, देहरादून, 2011, पृ0सं0 47।
16. Negi, Shantan, Singh, The Dola Palki Movement: Dalit Struggle for social justice in Uttarakhand during 20th century, Indian History Congress, Vol. 72, 2011, Pg. 786.
17. ढौंडियाल, डॉ0 नन्दकिशोर, गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां, (सन् 1986 से सन् 1990 तक), भाग–2, धाद प्रकाशन, देहरादून, 2011, पृ0सं0 48।
18. ढौंडियाल, डॉ0 नन्दकिशोर, गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां, (सन् 1986 से सन् 1990 तक), भाग–2, धाद प्रकाशन, देहरादून, 2011, पृ0सं0 48–49।
19. पूर्वोक्त पृ0सं0 49।
20. पूर्वोक्त पृ0सं0 49–51।
21. पूर्वोक्त पृ0सं0 50–51।
22. डोला–पालकी व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए प्रयुक्त की जाती है। स्वतंत्रता पूर्व तक उत्तराखण्ड हिमालय क्षेत्र में डोला दुल्हन के लिए तथा पालकी दूल्हे को ले जाने के लिए विवाह समारोह में सवर्णों (उच्च वर्ग) द्वारा प्रयोग की जाती थी।[4] वर्तमान में डोला का प्रयोग दुल्हन को ले जाने हेतु अभी भी किया जाता है, किन्तु पालकी का प्रयोग प्रायः कुछ ही क्षेत्रों में प्रचलित है।
23. ओड़ गढ़वाल क्षेत्र में उन शिल्पकारों के लिए प्रयोग किया जाता है, जो भवन निर्माण का कार्य करते हैं।
24. धुलेटा शिक्षा की वह सरल विधि थी जिसमें गुरू अपने शिष्य को लिखने की कला सिखाने के लिए तख्ती में मिट्टी फैला देते थे और उसके पश्चात पूर्व में अपने अंगुली से कलात्मक अक्षर बनाते और बाद में शिष्य को भी ऐसा करने को कहते थे।